गौरीशंकर 'परदेसी'

हिन्दी ADDA

अर्पण कुमार

गौरीशंकर 'परदेसी

गौरीशंकर दुबे हर सुबह नियमित रूप से टहलने नहीं जा पाते थे। उन्होंने जीवन भर अपनी मर्जी चलाई। हर बात में। पहनने-ओढ़ने से लेकर खाने-पीने तक हर चीज में जो खुद के मन को रुचा वही किया। नए-नए जब कॉलेज गए थे, तब उन्हें एन.सी.सी. ज्वायन करने का मन किया। पिता की खरीदी अपनी साइकिल पर सगर्व सवार होकर वे अपने कॉलेज के 'प्ले-ग्राऊंड' में गए। वहाँ इंसट्रक्टर द्वारा कराए जा रहे लेफ्ट-राइट उनको अपने मन-माफिक नहीं लगा तो उन्होंने दुबारा उसकी ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। खैर, कॉलेज से निकलते-निकलते उनका एक सरकारी नौकरी में

चयन हो गया और उनकी पहली नियुक्ति दिल्ली में हुई। फिर मुंबई में और आजकल वे जयपुर में हैं।

शहरों का परिवर्तन गौरीशंकर बाबू पसंद ही करते रहे हैं। उनका मानना है कि स्थानांतरण से व्यक्ति महज किसी नई जगह पर नहीं जाता है, बल्कि इससे स्वयं उसके और उसके बाल-बच्चों के अंदर कई किस्म की नवीनताओं का समावेशन भी होता है। इससे जीवन में एक रोचकता बनी रहती है। उनकी पत्नी को, जो बिहार की एक विशुद्ध कस्बाई संस्कृति से आती हैं, शुरू शुरू में अपने पति की इस अदला-बदली से बहुत परेशानी होती थी। बाद में वे भी अपने पति की रौ में बहने लगीं।

जयपुर में रहने के लिए गौरीशंकर बाबू को कुछ दिनों में एक सरकारी आवास आबंटित हो गया। थोड़ी मशक्कत के बाद एशिया की सबसे बड़ी कॉलोनी कहे जानेवाले 'मानसरोवर' के एक अच्छे अँग्रेजी मीडियम स्कूल में अपने एकमात्र सुपुत्र का उन्होंने दाखिला भी करा दिया। लेकिन जरा रुकिए यह कहानी गौरीशंकर बाबू की है न! तो दाखिला शब्द उनके संदर्भ में ठीक नहीं लगेगा। हमेशा अपने स्टेटस सिंबल को लेकर सजग रहनेवाले गौरीशंकर बाबू का सुपुत्र विद्यालय में दाखिला नहीं बल्कि स्कूल में एडमिशन लेगा! अपने एकमात्र बेटे पर वे जी खोल कर खर्च करते हैं। पैसा बचाकर क्या करेंगे! अपने साथ स्वर्ग में थोड़े ही न ले जाएँगे! पत्नी की चिल्ल-पों पर हर बार यही कहकर उसे चुप करा देते हैं गौरीशंकर बाबू। हर महीने अकेले स्कूल-फीस के नाम पर यही कोई छह हजार रुपए का खर्च वे खुशी-खुशी करते हैं। महीने-दो महीने में किसी-न-किसी एक्टिविटी के नाम पर कभी पाँच सौ तो कभी हजार का चूना लग ही जाता है। ऐसे में विद्यालय और दाखिला जैसे शब्द उन्हें पानी की तरह खर्च हो रहे अपने पैसे का अपमान लगता है।

आजीवन पढ़ाई से प्यार करनेवाले गौरीशंकर दुबे की यात्रा कोई कम लंबी नहीं है। एकदम भुच्च देहाती से एक सभ्य शहरी बनने तक की यात्रा। कई दशक लगे उन्हें यहाँ तक पहुँचने में। शारीरिक और मानसिक; तार्किक और आत्मिक; सामाजिक और सांस्कृतिक हर स्तर पर कितनी तैयारी करनी पड़ी उन्हें इसके लिए! गुरुदत्त की स्टाइल में अपनी हल्की मूँछों के बीच मुस्कुराते हुए कहीं-न-कहीं वे अपनी इस प्रगति पर मन ही मन इतराते भी हैं। कहाँ तो वे अपने गाँव में दैनिक कार्यों से निवृत्त होने के लिए खेतों की सैर किया करते थे, नदी-तालाब के किनारे जाया करते थे। भरी बरसात में जब हर जगह पानी भरा होता था तो किसी ऊँची अलंग पर से दबाव मुक्त होना उन्हें आज भी भली-भाँति याद है। तब कितनी मुश्किल से वे कुछ देर बैठ पाते थे।

बीच अलंग पर बैठना कितना असभ्य लगता था मगर जब हर तरफ पानी में मनुष्यों के मल छहला रहे हों, ऐसे में नीचे किसी खेत की मुँडेर पर बैठा भी तो नहीं जा सकता न! जाने क्यों गौरीशंकर शुरू से ही अपने हर तरह के व्यवहार को लेकर या कहें अपनी जीवनशैली को लेकर बेहद संजीदा और संवेदनशील थे। वे हर समय व्यक्तिगत तो कभी सामूहिक विकास की और बेहतर जीवन-शैली की बातें सोचा करते थे। उन्हें अपने गाँव से कोई चिढ़ नहीं थी मगर वे यहाँ भी सीमित संसाधनों में ही सही एक गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने का विकल्प ढूँढ़ना चाहते थे।

गाँव में सुबह-सुबह दातुन रगड़ते लोगों की भरी पंचायत में गौरीशंकर अपने टूथ-ब्रश में पेस्ट लगाए और स्टील के एक जग में पानी लिए ब्रश कर रहे होते। एक दिन की बात है, ऐसी ही एक सुबह गौरीशंकर के सहपाठी संजू पासवान के पिता रामदीन पासवान आ गए। उन्हें हरेक को कोई न कोई उपनाम देने की आदत थी। मिट्टी और फूस के कच्चे मकान में रहनेवाले थे तो वे एक गरीब आदमी ही और उनके पास यही कोई एकाध बीघा खेत भी मुश्किल से ही होगा। गाँव में कभी इसका तो कभी उसका खेत बटाई पर लेकर वे अपना और अपने परिवार का पेट पाला करते थे। मगर अपनी आर्थिक हैसियत से इतर वे गाँव के सबसे बड़े हुनरमंद और किस्सागो थे। चुटकलेबाज उनके जैसा कोई नहीं, हाजिरजवाब उनके जैसा कोई नहीं। उस सुबह भी एक जग लेकर गौरीशंकर सदा की ही भाँति गाँव के 'बथान' पर बैठे ब्रश कर रहे थे। बाकी लोग जहाँ नीम, बाँस, आम या किसी और वृक्ष की शाखा से कोई मुलायल, लचकती, कच्ची लकड़ी तोड़कर दातुन कर रहे थे वहीं गौरीशंकर बाबू बाजाप्ता टूथ-पेस्ट और ब्रश के साथ मजे से अपने दाँत चमकाने में तल्लीन थे। टूथ-पेस्ट और ब्रश का इस्तेमाल तो वे कर रहे थे लेकिन उनके अंदर का ग्रामीण यहाँ भी अपना काम कर रहा था।वे ब्रश करते हुए भी लगभग उतना ही समय लगा रहे थे जितना लोग दातुन करने में लगाते हैं। इसीलिए उनके ब्रश के रोंएँ जल्दी एक तरफ झुकी डाल की तरह मुड़ जाया करते थे।

और फिर यह क्या, अपने ट्रेड-मार्का अंदाज में सभा का विसर्जन करते हुए रामदीन पासवान ने उस सुबह गौरीशंकर का आखिरकार नामकरण कर ही दिया... गौरीशंकर परदेसी।

समाज में रहते हुए हमारी हर हरकत पर एक साथ कई निगाहें पड़ रही होती हैं। तभी तो गाँव की औरतें अपने बच्चों के माथे पर काजल के बड़े-बड़े टीके लगाकर उन्हें बाहर भेजती हैं जो शहरों में आकर कुछ छिपे अंदाज में बच्चे के कान और सिर के बाल के बीच कहीं न दिखती सी किसी जगह पर लगा दिए जाते हैं। ठीक वैसे ही जैसे गाँव की

औरतें अपनी माँग में खूब लंबा और गहरा सिंदूर लगाती हैं वहीं शहर की औरतें बालों से ढकी अपनी माँग में कहीं किसी एक बिंदु पर छोटा सा टीका लगाकर रह जाती हैं। रामदीन पासवान भी एक तीक्ष्ण निरीक्षक और आलोचक ठहरे।वे गौरीशंकर के व्यवहारों पर निरंतर दृष्टि जमाए हुए थे। मगर अबतक दुआ-सलाम तक ही उनका रिश्ता था गौरीशंकर से। अपने मजाकिया स्वभाव के विपरीत वे गौरीशंकर के साथ गंभीर ही रहा करते थे। मगर उस सुबह उन्हें जाने क्या सूझा कि वे गौरीशंकर के साथ अपने मूल स्वभाव में आ गए। काफी देर तक वे गौरीशंकर को छेड़ते रहे। गौरीशंकर पानी-पानी हो गए। गाँव वालों ने उस दिन गौरीशंकर की टाँग-खिंचाई का खूब मजा लिया। उनका यह मजा द्विगुणित हो रहा था क्योंकि इन सबके बीच गौरीशंकर लगातार झेंपते चले जा रहे थे। और फिर यह क्या, अपने ट्रेड-मार्का अंदाज में सभा का विसर्जन करते हुए रामदीन पासवान ने उस सुबह गौरीशंकर का आखिरकार नामकरण कर ही दिया... गौरीशंकर परदेसी। आज से गौरीशंकर दुबे, गौरीशंकर परदेसी कहलाया करेंगे। रामदीन पासवान की ओर से भरी सभा में जो यह घोषणा हुई तो पूरी सभा 'हो-हो' की अनुगूँज से गुँजायमान हो गई। और फिर वह नाम ऐसा चल पड़ा कि गाँव में क्या पूरे इलाके में गौरीशंकर दुबे हमेशा के लिए गौरीशंकर परदेसी हो गए।

यही तो खासियत थी रामदीन पासवान कि उनका नाम एकदम सटीक बैठता था और गाँववालों के मुँह पर ऐसे चढ़ता था जैसे खेत से लौटने के उपरांत उनके पूरे शरीर पर मिट्टी चढ़ जाया करती है।खैर, गौरीशंकर तो उस दिन काफी झेंपे, कुनमुनाए। मगर गाँव के बड़े-बुजुर्ग के बीच क्या कर सकते थे! बाद में तो लोग उन्हें इसी नाम से पुकारने लगे। देखो गौरीशंकर परदेसी आ रहा है। वे जितना चिढ़ते लोग उन्हें उतना चिढ़ाते। फिर एक दिन उन्हें लगा कि इस मजाक का मजा उन्हें भी लेना चाहिए। और फिर क्या था अपने इस नाम के प्रचलन में आने पर वे खुद भी ठहाका मारकर हँसने लगे। कालांतर में मजाक भी सच का रूप लेना लगता है। गौरीशंकर सोचने लगे, क्या उनका चाल-चलन वास्तव में उनके साथी गाँववालों से भिन्न है या फिर खामख्वाह ही उनके कुछ शहरी अंदाज को जरूरत से अधिक तूल दिया जा रहा है। कोई गौरीशंकर को कहता कि... देखो परदेसी आ रहे हैं तो वे एक हल्की हँसी हँसकर उसकी बात को अनसुना कर देते मगर अगले ही पल मन ही मन वे खुद को गौरीशंकर परदेसी कहकर देखते। 'परदेसी' लफ्ज़ पर कुछ देर जरूर टिकते।

हालाँकि यह गौरीशंकर को पता था कि नीम जैसे उपयोगी और चिकित्सीय महत्व के वृक्ष की ताजी और लचीली लकड़ी से दाँत साफ करना कितना उपयोगी है, मगर

रोज-रोज उन्हें तोड़ने के चक्कर से वे बचना चाहते थे। अगर एक बार किसी से तुड़वा कर रख भी लो तो वे क्रमशः सूखने लगते हैं। फिर उनके पिता जब कभी बाहर से आते टूथपेस्ट, ब्रश, साबुन, सर्फ जैसे घर के जरूरी सामान लाना नहीं भूलते थे। गौरीशंकर को सहसा अपने पिता की याद हो आई और उनका मस्तक अपने आप उन्हें याद करके झुक गया। उनके पिता सेना में थे और 1962 की कई कहानियाँ सुख-दुख के मिश्रित भाव लिए वे सुनाया करते थे। उन कहानियों को सुनने के लिए पूरा गाँव चौपाल में इकट्ठा हो जाया करता था। सदा की ही भाँति एक दिन सुबह-सुबह अपनी दिनचर्या के मुताबिक उनके पिता गाँव में बड़े से सार्वजनिक कुएँ पर भले-चँगे नहा रहे थे। अचानक पाँव फिसला, ईंट के बने फर्श पर ऐसे गिरे कि पलक झपकते वहीं शहीद हो गए। पूरा गाँव अपने बहादुर सैनिक की यूँ अचानक हुई मौत पर दुखी था। गौरीशंकर को अपने पिता की सेवा करने की बड़ी श्रद्धा थी। अक्सर वे अपने सपनों में अपने पिता के पैर दबाते रहते थे।

मगर एक 'एक्स-सर्विस मैन' का जज्बा उनके पिता में ऐसा भरा हुआ था कि वे कहा करते थे, "बेटा गौरीशंकर, तुम अपने काम में मस्त रहो। तुम्हारा पिता एक हिम्मती सैनिक है। वह जब तक जीएगा अपने बल-बूते जीएगा।" जाते-जाते भी एक्स सर्विस मैन ने अपने वचन की लाज रखी। उस दिन अपने पिता की मौत पर गौरीशंकर को यही बातें याद आती रहीं और वे काफी देर तक मन ही मन सिसकते और सोचते रहे। पिताजी ठीक कहा करते थे, उन्हें शायद अपनी मौत का पूर्वानुमान था। वे कितने बड़े स्वाभिमानी निकले! अपना पूरा जीवन बगैर किसी पर बोझ बने गुजार दिया। किसी के लिए कुछ करना उन्हें मंजूर था मगर किसी की सहायता लेने से वे हरदम बचना चाहते थे। वे हरदम भगवान से प्रार्थना किया करते थे, उन्हें ऐसा दिन न देखना पड़े जब किसी के आगे उन्हें अपनी झोली फैलानी पड़े। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना शायद सुन ली थी।

यहाँ सुदूर जयपुर में आज गौरीशंकर को अपने सैनिक पिता काफी देर तक याद आते रहे। और आएँ भी क्यों नहीं, यहाँ उनके घर से थोड़ी ही दूरी पर दिल्ली के इंडिया गेट (हालाँकि आकार और जगह के हिसाब से दोनों की कोई तुलना नहीं की जा सकती) की तर्ज पर एक शहीद स्मारक बना हुआ है। जब कभी समय मिलता है, गौरीशंकर वहाँ टहलते हुए चले जाते हैं। वहाँ दीवारों पर देश के लिए शहीद हुए राजस्थान के सैनिकों के नाम खुदे हुए हैं। वे कई बार वहाँ खुदे एक-एक नाम को बड़े आदर भाव से और काँपते हाथों से देर तक छूते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ते। उसके ठीक पीछे एक बड़ा सा

अंतरराष्ट्रीय मानक का स्टेडियम है, जिसमें वे कई बार तेज-तेज कदमों से चलते हुए ब्रिस्क-वॉक किया करते।

गौरीशंकर ने अपनी आँखों से बहते हुए आँसू को पोंछ डाला। उन्हें अचानक बड़ी शिद्दत से यह महसूस हुआ कि उन्हें एक ऐसे बहादुर व्यक्ति की मौत को याद करके रोना नहीं चाहिए। पहले वे देश के एक सच्चे सपूत थे। उनके पिता वे बाद में थे। अपने पिता के जज्बे के आगे उन्हें अपना कद बड़ा बौना जान पड़ा। उन्हें अपना इस तरह सिसकना अपनी कायरता की निशानी लगी। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि हो सका तो वे भी कभी देश-समाज के लिए कुछ करके दिखाएँगे और अब से कभी भी अपने पिता को याद करके यूँ फूट-फूट कर नहीं रोएँगे।

जयपुर में गौरीशंकर के घर के बगल में एक बंगाली मार्केट है जहाँ एक छोटी सी सब्जी मंडी है। वहाँ हर शनिवार बंगाल/बिहार के विभिन्न इलाकों से सब्जियाँ आती है और कई बार गौरीशंकर भी वहाँ जाकर सब्जियाँ खरीदते हैं।इसके अलावा सुबह टहलते हुए वे यूँ ही उधर का रुख कर लेते हैं। बाँस की खपचियों में टेंटनुमा घर बनाकर रहनेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुष को वे बड़े ध्यान से और देर तक देखते रहते। गौरीशंकर सोचते, हम कितने बड़े हो जाएँ! कितनी दूर आ जाएँ! कैसे भी काम करने लगें हमारी पुरानी खासकर बचपन और किशोरावस्था की कहानियाँ भुलाए नहीं भूलती। कई बार गौरीशंकर जयपुर में सुबह-सुबह की सैर करते हुए अपने गाँव और अपनी किशोरावस्था के धूमिल होते प्रसंगों को चुपके से याद कर लेते हैं। तब आधे घंटे की अपनी सैर के दौरान वे देख तो जयपुर को रहे होते हैं मगर उनके भीतर कहीं बहुत गहरे तक किसी चलचित्र की भाँति उनका गाँव चल रहा होता है। उन्हें बंगाली मार्केट में पुरुषों के लुंगी पहने और महिलाओं के धोती पहने हुए इधर-उधर घूमना कुछ अजीब नहीं लगता है। क्योंकि वे स्वयं कक्षा आठ से लुंगी पहनने लगे थे। उल्टे पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, उड़ीसा जैसे राज्यों से आए प्रवासी कामगारों की यह दुनिया उन्हें एक परिचित दुनिया ही लगती।

उन्हें एक खास किस्म का संतोष और अपनापा लगता ऐसे इलाकों में घूमते हुए और उन लोगों से मोल-मोलाई करते हुए। मगर सिर्फ इसी आधार पर गौरीशंकर का मिजाज उनसे नहीं मिल सकता था। क्योंकि लंबे समय से बाहर रहते हुए दुबे जी को अब तक दुनिया के कई रंगों से वास्ता पड़ चुका था। इसे आप गौरीशंकर के भीतर का अंतर्द्वंद्व भी कह सकते हैं या परदेस में स्थानीयता बनाम स्थानीयता का पारस्परिक संघर्ष भी समझ सकते हैं। क्योंकि ऐसी परिस्थिति में कई रोचक घटनाएँ घटा करती थीं और ज्यादातर मामलों में गौरीशंकर को अपने क्षेत्र के इन कामगारों के

अपने प्रति किए जाने वाले व्यवहारों को लेकर कुछ अच्छे अनुभव नहीं हुआ करते थे। हालाँकि इसके लिए वे खुद को भी कम दोषी न मानते थे। उनकी कड़क आवाज, उनके तीखे नाक-नक्श, तुरंत रौद्र रूप में आ जाने की उनकी आदत। आज के जमाने में कौन किसके प्रति आदर रखता है! और जहाँ तक ससुरे इन कामगारों की बात है, हर ऐरे-गैरे से डरेंगे अगर वह स्थानीय है और अगर आप उसकी ही तरह पुरबिया हैं तो आप उसके ठीए पर तो पहुँचेंगे बाद में, वह आपको दूर से ही पहचान लेगा और आपके स्थायी आवास की टोह ले लेगा। ऐसी कुछ खासियत ही होती है क्षेत्र-विशेष की चाल-ढाल, पहनावे और बोलचाल में कि बंदा अपने इलाकेवालों की रडार तले पकड़ में आ ही जाता है। हो सकता है बगल के ठीए वाला आपको यहीं का समझे, मगर क्या मजाल है कि कोई पुरबिया दुकानदार आपको पहचानने में कभी कोई गलती करे! और आप इस भ्रम में न रहें कि वह आपके कपड़ों या आपकी नफासत के प्रभाव में आएगा! भाई साहब वह बस इतना सोचता है कि जिस तरह मैं परदेस में किसी तरह अपना और अपने परिवार का पेट पाल रहा हूँ वैसे ही ये हजरत यहाँ आए हैं। फिर चाहे आप लाट-कलक्टर हों, अपनी बला से! वह आपके कारण यहाँ थोड़े ही न टिका हुआ है!

परदेस में तमाम तरह के संघर्ष और अपमान भरे जीवन ने नंगी और कड़ी धूप में उन्हें कुछ इस तरह तपा दिया है और ऐसा लोहा बना दिया है कि उनके अंदर की सारी कोमलता नष्ट हो चुकी है। ऐसे में आप उससे ताव में बात करेंगे तो हो सकता है किसी 'लोकल' का ताव तो वह कुछ देर के लिए सह ले मगर वह आपका नहीं सहेगा! वर्ग-चेतना की सोपानीकृत व्यवस्था में वह एकदम निचली पायदान पर जमा हुआ है। वह स्वयं अपनी इस हालत को मन हुआ तो मान लेगा मगर आप उसे उसके इस पायदान पर होने का अहसास दिलाएँगे तो वह बिफर पड़ेगा। यह ठीक भी है। कोई अपने को कम क्यों समझे! गौरीशंकर कई बार सामनेवाले की निगाह से भी दुनिया को देखते! ऐसा ही चरित्र था गौरीशंकर का, जिन्हें नापसंद (नफरत नहीं) करते उनसे भी देर तक नाराज नहीं रह पाते। अपनी पत्नी से कहते, "चलो हमारा क्या जाता है, अच्छा व्यवहार करे या बुरा। उसकी बला से।" मगर कहीं भीतर ही भीतर गौरीशंकर प्रतिकूल स्थितियों में उनके द्वारा किए जा रहे संघर्ष को सलाम किया करते और उनकी प्रकट अक्खड़ता को उनकी स्व-रक्षा की टिपिकल देसी तकनीक मानते थे।

गौरीशंकर की कॉलोनी में देश के अलग-अलग प्रदेशों से आए कई परिवार रहा करते थे। शुरू-शुरू में गौरीशंकर को लगा कि चलो अच्छा है एक ही जगह पर मिनी इंडिया देखने को मिलेगा। और अपने इस ख्याल से वे कुछ रोमांचित भी हुए। मगर जिस कलरफुल इंडिया की छटा देखने की उनकी उम्मीद थी वह तो उन्हें वहाँ नहीं दिखी

बल्कि उसकी जगह टूटे-फूटे लोग और उनकी दमित कुंठाएँ ही सामने आईं। छोटे-छोटे बच्चों के झगड़ों पर आपस में लड़ते-झगड़ते और एक-दूसरे से मुँह फुलाते बड़े लोग ही उन्हें नजर आए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि क्या शहरी भारत यही है! क्या सॉफिस्टिकेटेड लाइफ स्टाइल इसे ही कहते हैं! गौरीशंकर इन दिनों बात-बात में कंधे ज्यादा उचकाने लगे थे।

कहाँ तो शोभना तेज-तेज कदमों से चलकर अपने शरीर का अधिक-से-अधिक पसीना बहाना चाह रही थी और कहाँ गौरीशंकर बाबू जयपुर की सड़कों पर यहाँ के स्थानीय निवासियों से अलक्षित और अप्रयुक्त रहने वाली मुनगे की फलियों की ओर देख कुछ-न-कुछ सोचते हुए धीरे-धीरे चले जा रहे थे।

जयपुर में सुबह सुबह अकेले पैदल सैर करते हुए वे ज्यादातर गाँव-जवार की बातें सोचा करते थे। घर में आकर भी वे जब-तब अपनी पत्नी के समक्ष ऐसा ही कोई प्रसंग छेड़ देते। पत्नी शोभना कुछ समझती और कुछ नहीं समझती। वह अपने पति को एक हद तक तो समझती थी मगर कोई किसी के अंदर चाहे कितना ही क्यों न उतर जाए, उसे ठीक-ठीक नहीं समझ सकता। फिर चाहे वे आपस में पति-पत्नी ही क्यों न हो! शोभना एक दिन अपने पति के भीतर झाँकने की ऐसी ही एक कोशिश करती हुई बोली, "आप जो इस तरह अकेले घूमते हैं, इससे तो अच्छा है न कि हम दोनों साथ ही घूमे"!

गौरीशंकर क्या बोलते! मगर उन्हें अपनी पत्नी की होशियारी को ताड़ते देर न लगी। शोभना कुछ-कुछ उन पर शक करती है, इसका आभास उन्हें पहले भी हुआ था। मगर वे सोचते,दुनिया की कौन पत्नी ऐसी है जो अपने पति पर शक नहीं करती! प्रकटतः उन्हें अच्छा ही लगा। चलो जो बातें वे अपने भीतर करते हैं अब वही बातें वे पत्नी के साथ कर लिया करेंगे। अपनी जिन स्मृतियों की दुनिया में वे स्वयं डूबते-उतराते रहते हैं अब उस गहराई में कोई और भी उनके साथ हो लिया करेगा। प्रकटतः बोले, "ठीक है, कल से साथ चलेंगे"।

अगले दिन उनकी पत्नी शोभना और स्वयं गौरीशंकर सुबह-सुबह पहली बार इकट्ठे सैर को निकल पड़े। सबसे पहले निचली मंजिल पर रहनेवाले भारद्वाज दंपत्ति ने उन्हें गौर से देखा और श्रीमती भारद्वाज ने मुस्कुराकर दोनों का हार्दिक स्वागत किया। इस कॉलोनी में दोनों पहली बार सुबह की सैर पर एक साथ बाहर निकल रहे थे। कुछ कदम चलने पर सोसाइटी का गेट आया जहाँ तैनात गार्ड ने कुछ अधिक अदब से आज दोनों को सलाम किया। सामने ही आसमान में सूरज पूरी तरह खिलने की

तैयारी कर रहा था। उसकी किरणों ने मानो दोनों का एक साथ अभिषेक किया। सड़क के किनारे लगे गुलमोहर, अमलतास के फूल खिले हुए थे।नीम में भी फूल आए हुए थे। बगल की कॉलोनी में पेड़ों की झुरमुट से कोयल की आवाज रह-रह कर कानों तक आ रही थी। सामने मुख्य सड़क पर आते ही भैरों बाबा स्थापित थे। पहले गौरीशंकर ने और फिर पति का अनुसरण करते हुए शोभना ने अपने सिर झुकाकर उनका अभिवादन किया। दोनों दाईं तरफ मुड़ गए। शोभना ने अचानक अपने कदम तेज किए। गौरीशंकर थोड़ा पीछे पड़ गए। उनके अंदर का पुरुष कहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ा। पीछे से ही आवाज लगाई, "अरे हाँ भई, इतनी तेज क्यों चल रही हो!"

पत्नी ने बिना पीछे मुड़े ही टेर लगाई, "दुबे साहब आप भी अपनी रफ्तार बढ़ाइए। इस तरह चहलकदमी करने से कुछ फायदा न होगा। थायरायड का टी.एस.एच. लगातार बढ़ता जा रहा है"।

गौरीशंकर क्या बोलते! वे अपनी आदत से मजबूर थे। एक तो उन्हें सुबह उठना ही भारी लगता था और फिर पसीने से तर-बतर होकर तेज-तेज चलना आज तक उन्हें कभी सुहाया ही नहीं।

"देखो शोभना, मैं तो यूँ ही चलता हूँ खरामा खरामा। प्रकृति और परिवेश का भरपूर जायजा लेता हुआ। मैं तो इनमें मन भर रमता हूँ। इनका हो जाता हूँ", गौरीशंकर ने थोड़ी दूरी से कुछ तेज आवाज में कहा।

इधर शोभना अपने बढ़ते वजन और टी.एस.एच. के मान की फिक्र में कुछ सुनने को तैयार कहाँ थी! वह तो सुबह की सैर को एक टास्क के रूप में लेकर अपने घर से निकली थी। दोनों मियाँ-बीवी में यही तो फर्क है। एक कहाँ अपने मन का गुलाम तो दूसरा कहाँ अपनी हर गतिविधि को बड़े नाप-तौल कर पूरा करनेवाली। और तब भी दोनों को एक छत के नीचे रहते हुए यही कोई पंद्रह-एक बरस तो हो ही गए होंगे। गौरीशंकर मन ही मन अपनी शादी का साल याद करने लगे।

कहाँ तो शोभना तेज-तेज कदमों से चलकर अपने शरीर का अधिक-से-अधिक पसीना बहाना चाह रही थी और कहाँ गौरीशंकर बाबू जयपुर की सड़कों पर यहाँ के स्थानीय निवासियों से अलक्षित और अप्रयुक्त रहने वाली मुनगे की फलियों की ओर देख कुछ-न-कुछ सोचते हुए धीरे-धीरे चले जा रहे थे। जिन पेड़ों पर मुनगे की पकी और सूख चुकी फलियाँ दिखतीं वहाँ वे दुखी हो जाते और जहाँ हरी और ताजी फलियाँ दिखने को मिलतीं वहाँ वे ललचाई आँखों से उसकी ओर देखते। किसी-न-किसी जुगत से वे उसे तोड़ लेना चाहते थे। मगर महानगरीय नफासत के मारे गौरीशंकर मन

मसोस कर रह जाते। फिर भी उस पेड़ के नीचे वे कुछ देर तक जरूर मँडराते। आज भी अपनी पत्नी के साथ चलते हुए वे कुछ देर के लिए अपने ऐसे ही प्यारे मुनगे के एक पेड़ के पास आकर खड़े हो गए। कहते हैं कि स्वाद की चसक आदमी को अपना गुलाम बना देती है। मगर यहाँ तो बात उससे भी बढ़कर थी। अरसा या कहें कई साल हो गए थे गौरीशंकर को मुनगे की सब्जी खाए हुए। झोल में डूबे हरे रंग के पतले-पतले डंठल को चूसने में कितना आनंद मिलता था उन्हें अपने बचपन में! सच आज भी गौरीशंकर मुनगे के उस स्वाद को भूले नहीं है! और मुनगा ही क्यों अपने बचपन की जाने कितनी चीजों को वे अपनी स्मृति में बसाए हुए हैं। फिर चाहे गाँव के बाहर बनी उबड़-खाबड़ फील्ड पर दिन-दिन भर फुटबॉल खेलना हो, बगल वाले गाँव के ईख के खेतों से ईखें चुराना हो, दियासलाई की डिबिया से मिट्टी की ईंटें बनानी हों,रात रात भर चैता गाना हो या फिर कुछ और उन्हें सब याद है।

आजकल जयपुर में गौरीशंकर का पेट कुछ ज्यादा निकल आया है। यहाँ के उनके कुछ सहकर्मी इस बात पर उनकी टाँग-खिंचाई भी करने लगे हैं। दुबे साहब सोचते और मन ही मन अपनी इस सोच पर हँस पड़ते, यह कौन सी बात हुई!! सारी करामात पेट की हो और खिंचाई टाँग की! यह तो टाँगों के साथ नाइंसाफी हुई !ऐसे ही बात बात में एक दिन उनके एक वरिष्ठ सहकर्मी आर.के. जैन कहने लगे, "यार दुबे साहब, आप सुबह सुबह सैर क्यों नहीं करते! आपके ठीक बगल में जयपुर का इतना बड़ा सेंट्रल पार्क है। पूरे जयपुर के वी.आई.पी. वहाँ दौड़ते हैं, 'योगा' करते हैं , कसरत करते हैं। आप भी जाया करो"।

दुबे साहब क्या कहते! बात तो पते की कही थी आर.के. जैन ने। मगर दुबे जी को ऐन मौके पर मजाक सूझ गया। छूटते ही बोले, "जैन साहब मैं वी.आई.पी. नहीं हूँ न!"

फिर दोनों मिलकर एकबारगी जोर से हँसे। खैर साहब यह तो दुबे साहब का एक रूप था मजाकिया और हँसमुख। मगर इनका एक दूसरा पक्ष भी है जो इनके भीतर कहीं छिपा हुआ है। वे एक बारीक निरीक्षक और उपनिवेशवाद पसंद विस्तारवादी व्यक्ति हैं। वे जहाँ जाते हैं, वहाँ कुछ जमीन-जायदाद लेने की सोचने लगते हैं। पता नहीं कभी किसी पुराने जमींदार के एक वारिस ने गौरीशंकर जी से कह दिया था, "दुबे साहब मेरा तो यह मानना है कि आदमी की अगर किस्मत हो तो ऐसी कि वह भूमि के जिस हिस्से पर पेशाब कर दे वह भूमि उसकी हो जाए"।

बहुत पहले कही गई यह बात गौरीशंकर को आज भी याद है। वे जहाँ जाते हैं, सबसे पहले वहाँ पेशाब अवश्य करते हैं। यहाँ जयपुर में भी किया और चाहे इस बात से कोई

संबंध हो या न हो मगर यहाँ भी उन्होंने दो वर्षों के भीतर 100 गज का एक प्लॉट खरीद लिया। मगर चाहे देश के किसी भी कोने में रह लें, गौरीशंकर की आत्मा आज भी मानो अपने गाँव में ही रमती है। यहाँ जयपुर में वे जिस इलाके में रहते हैं, राजस्थान की एक प्रचलित छवि से भिन्न काफी हरियाली है। साथ ही उनके कैंपस के अलावा कई दूसरे सरकारी विभागों के भी इस इलाके में अपने आवासीय परिसर हैं। ऐसे में समुचित रूप में भरपूर न सही तो यथेष्ट रूप में खुली जगह रखते हुए फ्लैटों का निर्माण किया गया है। फ्लैट भी अमूमन चार मंजिल तक ही हैं। कैंपस के अंदर खाली जगहों में पेड़-पौधे भी ठीक-ठाक संख्या में हैं। बच्चों के खेलने के लिए छोटा पार्क, बैडमिंटन कोर्ट आदि की सुविधाएं हैं। कुल मिलाकर माहौल प्राकृतिक है। इसलिए गौरीशंकर का मन यहाँ लगा रहता है। जब वे अपने बरामदे में बैठे होते हैं तब कोयल की कूक उनका मन मोह लेती है।

उन्हें इस तरह पेड़ों से घिरे माहौल में रहना अच्छा लगता है। बच्चों को स्कूल के लिए भेजने और टहल कर आने के बाद अमूमन दोनों मियाँ-बीवी बरामदे में प्लास्टिक की कुर्सी पर बैठ कर साथ ही चाय पीते हैं। सामने बरामदे से राजस्थान विधानसभा का गुंबद दिखता है। आज सुबह ही की तो बात है। कोई सप्ताह भर बाद गौरीशंकर अपने बच्चों को स्कूल-बस तक छोड़ने के लिए अपने मनपसंद पलंग से उठकर तैयार हुए। इस बीच यह काम शोभना ही कर रही थी। वह भी इसलिए कि कल रात उनका एकमात्र बेटा गौरव दुबे उनसे अपने बस ड्राइवर की शिकायत कर रहा था, "पापा, आजकल फिर से हमारे ड्राइवर अंकल हमारे साथ गलत व्यवहार करने लगे हैं। अगर मैं किताब निकालकर पढ़ने लगता हूँ तो वे डाँट देते हैं। या फिर हम दो दोस्त, खड़े होकर बात करने लगते हैं तो कई बार बस के तेज मुड़ने पर हम अचानक गिर पड़ते हैं। हमें चोट लग जाती है। टर्निंग पर भी वे बस धीमी नहीं करते हैं।" गौरव आदतन थोड़ा रुक-रुक कर अपने स्कूल-ड्राइवर की शिकायत अपने पापा से कर रहा था। दुबे साहब को गुस्सा तो खूब आ रहा था, मगर क्या करें, यहाँ जिसे देखो वही बदतमीजी पर उतरा हुआ है। किस-किस को सुधारें! फिर कौन किसकी सुन रहा है! अभी हाल ही में तो बस के ड्राइवर और कंडक्टर दोनों से उनकी ठीक-ठाक मुठभेड़ हुई थी। मगर फिर वही ढाक के तीन पात। गौरीशंकर खून का घूँट पीकर रह गए। फिर अपने बेटे को ही समझाया, "बेटा खड़ा होकर आपको बात करने की क्या जरूरत है! आप खाम-ख्वाह गिर जाते हैं! आप जानते हैं कि बस तेज चलाना उसकी आदत हो गई है! पिछली बार भी उसे उतना समझाया था मगर कुत्ते की पूँछ टेंढ़ी की टेंढ़ी ही रहती है।" गौरीशंकर गाली नहीं देना चाह रहे थे मगर आवेश में उन्हें अपनी जुबान पर नियंत्रण न रहा।

और फिर, गौरीशंकर किसी भी सूरत में अपने बेटे को असुरक्षित और कमजोर नहीं होने देना चाहते थे।

सुबह की सैर में कहाँ तो आदमी स्वच्छ हवा को अधिक से अधिक अपने फेफड़े में उतार लेने के उद्देश्य से बाहर निकलता है और कहाँ इधर दिमाग में दुनिया भर की उलझनें चलती रहती हैं।गौरीशंकर अपनी सोसायटी के गेट के बाहर आई स्कूल बस में अपने बच्चे को बिठाकर एक सख्त निगाह ड्राइवर पर डालना न भूले। मगर प्रकटतः कुछ न बोले। उन्हें बहुत पहले किसी बुज़ुर्गवार ने कहा था, "गौरी, कई बार सख्त निगाह डालने भर से आदमी डर जाता है। कम से कम तब तो बिल्कुल ही जब वह सरासर गलती पर हो"। दुनिया बदली, लोग बदले, देश बदला, कहावतें बदलीं। कहाँ कुछ होता है! इन सबके बावजूद पुरानी कहावतों में बची-खुची ताकत को वे कुछ महत्व देते हैं और उसके अनुसार अपनी रणनीति बना लेते हैं।जबतक आगे की सड़क से बस बाईं ओर न मुड़ गई तब तक वे पीले रंग की स्कूल बस को एक जगह किसी पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े उसे जाती हुई देखते रहे। गौरव भी आदतन पीछे गर्दन घुमाए देर तक अपने पिता की ओर देखता हाथ हिलाता रहा। सुबह-सुबह जयपुर की सड़क पर राजस्थान विधानसभा से थोड़ी दूर यह मंजर बड़ा दिलचस्प था जब दो पिता-पुत्र इस तरह एक-दूसरे को ओझल होने तक पूरी निगाह देखते और एक दूसरे की ओर हाथ हिलाते रहे। पूरे वातावरण में वात्सल्य की गर्माहट तैर गई। अपनी धूप की गठरी को सदियों से उठाए रखा सूरज, इस समय वात्सल्य की गंगा में डूबे गौरीशंकर को पूरी पृथ्वीवासियों का आदि पिता महसूस हुआ। आत्मविभोर गौरीशंकर सड़क पर चहलकदमी करते हुए प्रकृति की लीला को समझने की कोशिश करते रहे। वे राह चलते हुए कई बार सूरज की ओर देखते और जितनी बार देखते उतनी बार उसकी ओर उनका सर अनायास झुक जाता।

गौरीशंकर अपने आस-पास के पेड़ पौधों की स्थितियों का जायजा लेते और अनजान लोगों की गतिविधियों पर किसी जासूस की सी नजर रखते हुए अपने दोनों हाथों में एक-एक लीटर के दूध की दो थैलियाँ झुलाते वापस अपने घर की ओर लौट रहे थे।

जब से गौरीशंकर ने कार ली है, सब्जी लाने, बच्चों के स्कूल में शिक्षक-अभिभावक की बैठक में भाग लेने, रात में कहीं डिनर पर जाने जैसे कई छोटे-मोटे कार्य वे कार से ही करने लगे थे। गौरीशंकर गाड़ी चलाकर खुश थे और शोभना और उनका बेटा उसमें बैठकर। ऐसे ही एक दिन सोमवार की सुबह मय पत्नी गौरीशंकर सब्जी लाने के लिए अपनी गाड़ी से निकले। बेटा स्कूल के लिए जा चुका था। इस समय दोनों मियाँ-बीवी ही थे। गौरव के रहते शोभना गौरीशंकर के साथ आगे वाली सीट पर कम ही बैठ पाती

थी। मगर जब कभी दोनों यूँ अकेले होते, शादी के पंद्रह वर्षों बाद भी दोनों के चेहरे पर एक-समान लाली आ जाती। गौरीशंकर कुछ भी उट-पटाँग कहकर अपनी पत्नी को छेड़ते। पतली और गौरवर्णा शोभना हँस-हँस कर दुहरी होती चली जाती। ऐसे में जो कोई बाहर से अंदर के दृश्य को कुछ देख पाता, उनके अनुमान में दोनों पति-पत्नी कम और प्रेमी-प्रेमिका अधिक लगते। आज गौरीशंकर कुछ अधिक मूड में थे। भोर में तेज बारिश हुई थी। सुबह का मौसम काफी सुहावना हो रखा था। साफ-सुथरी सड़क और नहाए-धुले पेड़-पौधे सब उनके अंदर के रोमांटिसिज्म को बढ़ाने का काम कर रहे थे। गौरीशंकर अमूमन गाड़ी धीरे चलाया करते थे मगर आज कुछ तेज और तीक्ष्ण अंदाज में वे गाड़ी को 'धुन' रहे थे। मानों गाड़ी स्वयं उनकी कोई प्रेमिका हो। वैसे कई बार शोभना गौरीशंकर को ताने मार चुकी थी, "अजी छोड़िए दुबे साहब, आप मुझसे अधिक अपनी गाड़ी और लैपटॉप को प्यार करते हैं। जिद करके ये दोनों सामान अच्छा लाने को मैंने ही कहा था। आखिर कुछ सामान तो ऐसे होते हैं जो हम बार-बार नहीं खरीदते। तो क्यों न ऐसा खरीदा जाए कि जिससे हमें पूरी संतुष्टि मिल सके। मगर मुझे क्या मालूम था कि उनकी सुंदरता का नशा आप पर ऐसा चढ़ेगा कि आप उन्हें हम सब से बचाते फिरेंगे। लैपटॉप का बैग और गाड़ी की चाबी आप कहाँ रखते हैं, हम माँ-बेटे को तो इनका भान तक नहीं होता। मुझे क्या मालूम था कि मैं अपने लिए ये दो सौतनें खरीद रही हूँ। आपने इतना प्यार तो मुझे इन पंद्रह सालों में एक बार भी नहीं किया जितना पिछले साल भर में लैपटॉप और गाड़ी के साथ किया।" गौरीशंकर मुस्कुराकर रह गए।

हमेशा गंभीर रहनेवाले गौरीशंकर को यूँ खुश देखकर शोभना भी अंदर ही अंदर काफी खुश हो रही थी। मगर कहते हैं न कि कई बार कोई बड़ी अनहोनी आने से पूर्व आदमी खुशी के ऐसे ही तरंगों में हिचकोले खाता है। अभी जिस बड़ी सड़क पर आकर अपनी कार को गौरीशंकर बाएँ मोड़नेवाले थे, पीछे से तेज आती इनोवा ने उनकी गाड़ी को बड़े जोर का टक्कर मारा। डिवाइडर से लगकर गाड़ी दो बार पलटी। खैर दुबे साहब की गाड़ी भी एक 'सेडान' ही थी, इसलिए दो बार पलटने के बाद गाड़ी खुद तो डैमेज हुई मगर दुबे साहब और उनकी पत्नी की जान बच गई। गौरीशंकर खुद को और अपनी पत्नी को किसी तरह कार से बाहर निकालने की कोशिश करने लगे। तब तक नुक्कड़ पर चाय बेचनेवाला वाला भगत, ऊँट चलानेवाले, मुहल्ले के लोग और राह चलते लोगों ने आकर सामूहिक रूप से दोनों मियाँ-बीवी को गाड़ी से बाहर निकाला। शोभना का सिर फट गया था और गौरीशंकर के बाएँ हाथ की हड्डी टूट गई थी। दोनों मियाँ-बीवी को अस्पताल ले जाया गया। शोभना के सिर के बाल काटे गए और फिर कोई सात-आठ टाँके लगाए गए। गौरीशंकर का बायाँ पाँव टूट गया और उनके दाएँ

हाथ में लोहे का रॉड लगाया गया और फिर हड्डियों को उसके सहारे जोड़कर उन पर प्लास्टर चढ़ाया गया। शुक्र था कि कोई सप्ताह भर के भीतर शोभना अपनी पुरानी रंगत में आ गई थी। उतने दिनों के लिए पूरा घर अस्त-व्यस्त हो गया था।

गौरीशंकर तो कोई महीने भर बिस्तर पर ही पड़े रहे। इस बीच उनके ऑफिस में न होने से जाने कितनी तरह की समस्याएँ आईं। दिन में उनका सहायक कई-कई बार फोन पर जानकारी लेता। क्या डी.पी.डी., क्या आर.टी.आई., क्या स्टॉफ सदस्यों का यात्रा-भत्ता बिल जाने कितने सारे विभाग उनके पास थे! दाएँ हाथ में प्लास्टर चढ़ा हुआ था। सो मोबाइल बाएँ हाथ में पकड़े देर-देर तक फोन पर ही वे कुछ-न-कुछ निर्देश देते रहते। कभी अपने इस 'इंपोर्टेंस' का ख्याल आते ही अंदर-अंदर उनकी छाती चौड़ी हो जाती। मगर एक ही बात जब उनका सहायक बार-बार पूछता और लाख समझाने के बाद भी किसी-न-किसी उलझन में बना ही रहता तो वे जोर से खीझ उठते। फोन पर ही उसकी हवा निकालने लगते। शोभना एक पल के लिए पशोपेश में पड़ जाती। सोचने लगती, वह अपने जिस पति को इतना 'गारंटेड' लेकर चलती है क्या वह सचमुच में इतना बड़ा अधिकारी है और लोग उसकी दहाड़ को इतना बर्दाश्त करते हैं! मन-ही-मन उसे अपने पति के ऐसे कद पर बड़ा गर्व होता मगर अगले ही पल कंधे उचकाकर किचन में चली जाती।

एक सूनी दोपहर गौरीशंकर अपनी पत्नी को कहने लगे, "देखो शोभना मुझे तो मेरी किशोरावस्था में ही मेरे गाँववालों ने गौरीशंकर परदेसी नाम दे दिया था। आज सोचता हूँ तो तब का मजाक सच लगता है। शायद रामदीन चाचा मेरी इस नियति को जानते थे। तभी उन्होंने मेरा ऐसा नामरण किया था। आज से कोई तीस वर्ष पूर्व जो मेरा नामकरण किया गया था, मुझे क्या मालूम था कि वह मजाक सच साबित होगा। आज देखो इस कार-दुर्घटना में मैं अपना एक पाँव तुड़वाए हुए बैठा हूँ। बाएँ पैर में प्लास्टर है और दाएँ हाथ में रॉड लगा हुआ है। बिस्तर में दिन-दिन भर अकेला पड़ा रहता हूँ। सोसायटी के लोगों को अपनी मौज-मस्ती से फुर्सत कहाँ है ऐसे में गाँव बड़ा याद आता है"।

शोभना ने सरलतापूर्वक कहा, "तो बनाइए प्रोग्राम गाँव का। चलते हैं वहाँ। आखिर वह आपकी जन्मभूमि है। आपके सगे भाई रहते हैं वहाँ। कुछ भी हो जाए खून का रिश्ता कभी ठंढा थोड़े ही न पड़ता है!"

अपनी रौ में शोभना क्या-क्या कहती गई। और किसी स्थिरचित्र से गौरीशंकर अपनी पत्नी की ओर देखते रहे। सारी बातें सुनकर चुपचाप रहे। मानो कोई बुत बिस्तर पर

पड़ा किसी को एकटक देख रहा हो। पत्नी से रहा न गया। उनकी बाँह सहलाती हुई बोली, " क्या बात है, ऐसे क्यों देख रहे हैं? कुछ बोलते क्यों नहीं?"

कमरे की छत को ओर सूनी आँखों से घूरते हुए वे कुछ देर चुप रहे। फिर बहुत धीमे स्वरों में कहना शुरू किया जैसे खुद को सुना रहे हों, "क्या बोलूँ, आज दूर-दूर तक मुझे कोई विकल्प नहीं सूझ रहा है। क्या यह स्थिति आज के समय की है और सभी लोग इसी तरह अलग-थलग पड़ रहे हैं! या फिर इसकी बुनियाद कहीं बहुत पहले बनी थी! क्या मनुष्य के पास विकल्पहीनता की ऐसी कोई स्थिति अचानक आती है"!

"अजी छोड़िए भी छोटा सा एक्सीडेंट है, आप इसे इतना दिल से क्यों ले रहे हैं" पत्नी ने उनका ध्यान किसी और तरफ बँटाना चाहा। बहुत देर से बिस्तर पर लेटे हुए थे गौरीशंकर। लेटे-लेटे मानों उनकी कमर अकड़ गई हो, थोड़ा उठकर बैठना चाह रहे थे। शोभना ने उन्हें उठाने में मदद की। अपनी पीठ को पलंग के सिरहाने लगाते हुए गौरीशंकर को बड़ा आराम मिला। बाएँ पैर में तो प्लास्टर ही लगा था। दाएँ पैर को घुटने से मोड़ते हुए गौरीशंकर अपनी पत्नी की ओर दुबारा मुखातिब हुए। अपने शरीर के इस बदले पोस्चर से उन्हें थोड़ा आराम महसूस हुआ। उन्होंने अपनी बात आगे जारी रखते हुए कहना शुरू किया, "देखो शोभना, बात छोटी या बड़ी दुर्घटना की नहीं है। बात है कि किस घटना से हम क्या सीखते हैं। अगर हम समय के बदलते नब्ज की धड़कन को अपनी हथेली पर महसूस न कर सकें तो हमारे मनुष्य होने का अर्थ ही क्या है!"

जरा सँभलते हुए गौरीनाथ आगे बोलने लगे, "देखिए शहर में हर कोई फ्लैट-संस्कृति का मुरीद होता चला जा रहा है और उसे हासिल करके या उसमें रहते हुए गर्व का अनुभव कर रहा है। दरअसल वे एक छोटे पिंजड़ेनुमा दड़बे में रहने के आदी हो चुके हैं।' न ऊधो को लेना न माधो को देना' के मुर्दा सिद्धांत के साथ"।

'लेकिन आप तो स्वयं इस सिद्धांत की वकालत किया करते थे जी' शोभना ने सशंकित निगाह से अपने पति की ओर देखा। किसी ने गहरी नींद में चिकोटी काटी हो जैसे, गौरीशंकर तड़प उठे। कहने लगे, "बस यही समझो शोभना कि मैं अब तक एक मूर्छा में जी रहा था। शहर का जो आकर्षण होता है उसकी खुमारी में जी रहा था अब तक। मगर एक छोटी सी घटना ने मुझे कहीं गहरे बहुत भीतर तक मुझे प्रभावित किया है। लगता है शहर की चकाचौंध में जो चीज पहले दफन होती है, वह व्यक्ति की मनुष्यता ही है। यहाँ तेज भागती जिंदगी में सबसे पहले हमारे अंदर की आत्मीयता

ही दबती और मरती है। मजे की बात यह है कि हम इसे ही आधुनिक और स्मार्ट होना कहते हैं"।

गौरीशंकर ने मन ही मन पुनः अपने गाँव की मिट्टी से जुड़ने का संकल्प लिया और बीच-बीच में गाँव जाते रहने का निश्चय किया। उन्हें अचानक अपने रिटायरमेंट की तारीख का ख्याल हो आया और लगा कि फुरसत के दिन गाँव में ही बिताए जाएँ। अपने गाँव से जुड़ी कई यादें उनके जेहन में कौंधने लगीं। उन्हें अपने बीते बचपन और अपनी आगत वृद्धावस्था की कड़ी अपना गाँव ही लगा। उन्हें लगा कि उनके इस कृत्रिम शहरी जीवन की ही तरह गाँव पर छींटाकशी करने का उनका विचार भी नकली था। गाँव, अभी भी अपनी लाख बुराइयों के बावजूद रहने लायक बचा हुआ है। सामूहिकता-बोध में कमजोर से कमजोर आदमी का भी वहाँ सामान्य रूप से ही सही गुजर-बसर हो जाता है। छोटे-मोटे संकट में लोग एक-दूसरे की मदद सहज भाव से करते हैं। उस मदद में उपकार का बोझ भी नहीं महसूस होता है। अचानक गौरीशंकर को गाँव की कक्षा चार में पढ़ी कहावत याद आई, 'लौट के बुद्धू घर को आए'।

उनके चेहरे पर आत्म-व्यंग्य की एक हल्की रेखा बनी और खिंचती चली गई। तभी उन्हें कक्षा चार का ही एक दूसरा मुहावरा याद हो आया, 'सुबह का भूला अगर शाम में आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते'। गौरीशंकर दुबे के मन में एक आत्म-संतुष्टि का भाव आया। उनके चेहरे पर उम्मीद की किरण दौड़ गई। उनके अंदर का आशावाद उफान मारने लगा। उन्हें लगा कि गाँव की आर्थिक और सामाजिक दशा भी समय के साथ बदलेगी। वहाँ भी विकास की बयार बहेगी। लोगों की मुफलिसी कुछ कम होगी और मुरझाए चेहरों पर मुस्कुराहट की धूप चमकेगी। वे स्वयं भी इस बदलाव का हिस्सा बनेंगे। शहर में लिजलिजाते बुढ़ापे को ढोने से बेहतर है कि उसे शान से अपने गाँव में शुद्ध हवा-पानी के बीच जीया जाए। अब गाँव में भी तो ज्यादा गहराई के 'चापाकल' बनने लगे हैं। उथले कुएँ और चापाकल तो जाने कब के सूख गए। खैर है तो यह दुखद ही, मगर पेयजल की गुणवत्ता में मजबूरी में ही सही सुधार आया है। उन्हें लगा कि शहर में कीड़े-मकोड़े की तरह जीने और जीवन भर एक पहचान के लिए तरसते रह जाने से बेहतर है कि गाँव में ससम्मान और गौरवपूर्ण तरीके से जीया जाए। वहाँ रहकर कुछ विशेष नहीं भी कर सके तो वे अपने स्तर पर गाँव की आगामी पीढ़ी को शिक्षित-दीक्षित करने का काम तो कर ही सकते हैं। यह सब सोचते हुए उन्होंने बगल में रखा एक पुराना ट्रांजिस्टर चल दिया। यह ट्रांजिस्टर उनके पिता ने उनके विद्यार्थी जीवन में उनके सत्रहवें वर्षगाँठ पर भेंट किया था। 'विविध भारती' पर साहिर का लिखा गीत बज रहा था....

वो सुबह कभी तो आएगी,

वो सुबह कभी तो आएगी,

वो सुबह कभी तो आएगी

इन काली सदियों के सर से

जब रात का आँचल ढलकेगा,

जब दुख के बादल पिघलेंगे,

जब सुख का सागर छलकेगा

जब अंबर झूम के नाचेगा,

जब धरती नगमें गाएगी

मिट्टी का भी है कुछ मोल मगर,

मगर इनसानों की कीमत कुछ भी नहीं

इनसानों की इज्जत जब झूठे सिक्कों में न तौली जाएगी

वो सुबह कभी तो आएगी, वो सुबह कभी तो आएगी,

वो सुबह कभी तो आएगी

उस दोपहर गौरीशंकर ने शोभना से दुनिया-जहान की बात की। ज्यादातर अपने गाँव के किस्से। और यहाँ शहर में रहते हुए अपने अंदर कहीं गहरे समाते जाते अकेलेपन को भी पहली बार खुल कर बाँटा गौरीशंकर ने अपनी पत्नी से। गाँव-शहर की तुलना करते हुए गौरीशंकर को कब झपकी लग गई, यह उन्हें पता ही नहीं चला। शोभना अपने पति की मासूमियत पर मुस्कुरा रह गई। गौरीशंकर सपने में रामदीन पासवान से बातें कर रहे थे। रामदीन चाचा... देखिए गौरीशंकर वापस अपने गाँव आ गया है। हमेशा-हमेशा के लिए। वह तो घर-परिवार के लिए मैं बाहर गया था चाचाजी। अब मैं रिटायर होकर होकर यहीं रहूँगा आप सबके बीच। गौरीशंकर ने सपने में देखा कि रामदीन पासवान एकदम से अशक्त हो गए हैं। अपने बिस्तर से उठ भी नहीं पाते।

उनका बेटा संजू पासवान दिन रात उनकी सेवा-टहल में लगा रहता है। उसी से गौरीशंकर को पता चला रामदीन चाचा अब ऊँचा सुनने लगे हैं। गौरीशंकर ने उनके कान के पास अपना मुँह ले जाकर जोर से बोला, "रामदीन चाचा अपना रखा नाम अब वापस ले लीजिए। गौरीशंकर परदेसी अब गौरीशंकर देसी हो गया है। सुन रहे हैं आप। गौरीशंकर परदेसी अब गौरीशंकर देसी हो गया है। सपना इतना सच्चा था कि उनके बगल में बैठी उनकी पत्नी शोभना ने भी अपने पति की बड़बड़ाहट सुनी '...गौरीशंकर परदेसी अब गौरीशंकर देसी हो गया है'।

मगर सपनों से इतर एक यथार्थ की दुनिया होती है... दोनों जुदा जुदा होती हैं मगर कई बार या कहिए अक्सरहाँ दोनों को आदमी एक साथ जीता है।

गौरीशंकर के साथ भी यही हुआ। उसके गाँव से संजू पासवान का फोन आया। उसके पिता रामदीन पासवान के बाएँ पैर में घुटने के नीचे लकवा मार गया था। गाँव में कुछ लोगों ने जयपुर के प्राकृतिक चिकित्सालय में दिखा आने की सलाह दी थी। संजू भी अपने पिता के पैरों के लिए हर संभावना को टटोलना चाहता था। उसी सिलसिले में संजू ने उसे फोन किया था। उस रात संजू से और फिर रामदीन पासवान से गौरीशंकर की देर तक बातें होती रही। गौरीशंकर को बड़ा अच्छा लगा कि उनके इतने प्यारे बुजुर्ग उनके घर पर आ रहे हैं। मगर उनसे मिलने में अभी कोई दो सप्ताह का वक्त था। उसे खुशी हुई कि वे उसके घर पर उसके साथ रहेंगे। वह उनसे अपने पुराने दिनों को ताजा कर सकेगा। वे इस देश में जाने कहाँ-कहाँ तक घूम आए, मगर उन्हें रामदीन चाचा जैसे अनुभवी और गप्पबाज, मँजे हुए व्यंग्यकार अब तक नहीं मिले थे। हर मामले में, वे बहुत सटीक और सधी हुई टिप्पणी किया करते थे। गौरीशंकर की आज जो और जितनी भी वाक्क्षमता थी, उसका एक बड़ा श्रेय, रामदीन चाचा को जाता है।

आखिरकार वह दिन भी आ गया, जब गौरीशंकर, रामदीन चाचा से मिले। वे उन्हें लाने स्वयं स्टेशन पर गए थे। रेलवे के स्लीपर कोच से जैसे ही रामदीन चाचा आए, उनके पोपले चेहरे और अत्यंत दुर्बल शरीर को देखकर उन्हें अचानक से मोहभंग हुआ। रामदीन चाचा की जो छवि उनकी चेतना में थी, उससे बिल्कुल विलग यह एक थके हारे और लस्त-पस्त बुजुर्ग की कारुणिक स्थिति थी। उन्हें मन ही मन, अपने दोस्त संजू पर गुस्सा आया। क्या उसे ऐसी किसी बड़ी खख्सियत का ध्यान ठीक से नहीं रखना चाहिए! ऐसे लोग किसी के पिता मात्र नहीं होते, वे समाज के धरोहर होते हैं। क्या उसे इतनी सी बात भी पता नहीं है! रामदीन चाचा के धूल धूसरित पैरों की ओर जब गौरीशंकर का दायाँ हाथ बढ़ा, तो रामदीन चाचा ने उन्हें बीच में ही रोककर

उनके ललाट और सिर के बाल को सहलाया। मगर उनके काँपते हाथों को वहाँ तक पहुँचने में कुछ वक्त लगा। गौरीनाथ को याद आया... पहले भी जब कभी, वह उनके पैरों को छूने आगे बढ़ते थे, वे उन्हें बीच में ही रोककर जी भर कर आशीर्वाद दिया करते थे। आज भी वे यही कर रहे थे। मगर आज यह करते हुए वे कितने दयनीय लग रहे थे!

अस्पताल, चिकित्सक, टेस्ट लैब, दवा की दुकानों आदि के चक्करों में संजू के साथ गौरीशंकर भी दिन रात एक किए हुए थे। उनके बाएँ पैर में घुटने के नीचे लकवा मार गया था। कभी एकदम तंदरुस्त और हृष्ट-पुष्ट रहने और दिखनेवाले रामदीन चाचा का वजन अब काफी कम रह गया था। उनका चेहरा तो एकदम पोपला हो गया था। भीतर का व्यंग्यकार मरा तो नहीं था मगर वक़्त के थपेड़ों से मुरझा अवश्य गया था। गौरीशंकर पूरे दो बरस के बाद अपने रामदीन चाचा को देख रहे थे। उनकी स्मृतियों से बिल्कुल भिन्न मानों यह एक दूसरे ही रामदीन थे। आत्मीयता का रस पूर्ववत टपकता था, मगर अब इस बूढ़े हो चुके फल में रस मानों नाममात्र ही रह गया था। गौरीशंकर, कई बार आगे बढ़कर बातचीत की पहल करते, मगर रामदीन चाचा की ओर से अपेक्षित ऊर्जा की कमी पाते। गौरीशंकर स्वयं 50 को छूनेवाले थे और कई बार, सेवानिवृत्ति के बाद, अपने गाँव में ही बसना चाहते थे। वे इस बाबत रामदीन चाचा से आगे सलाह-मशविरा करना चाहते थे। मगर रामदीन चाचा का स्वास्थ्य सही नहीं रहता था। वह चाहकर भी उनसे कुछ पूछ नहीं पा रहे थे। फिर आजकल उनकी उदासी भी गौरीशंकर को उनके करीब जाने नहीं दे रही थी।

डॉक्टर अपना काम कर रहे थे। कुछ दवाइयाँ, पैरों की मालिश और उनके कुछ व्यायाम चल रहे थे। मगर उनका सबसे अधिक जोर स्वास्थ्यबर्द्धक खाने पर था। उन्हें शक था कि रामदीन जी को उनके गाँव में पौष्टिक खाना शायद न मिल पा रहा हो। गौरीशंकर की तेज चलनेवाली बुद्धि चिकित्सकों का इशारा समझ रही थी। शनिवार की शाम खाना खाने के बाद, घर से बाहर गौरीशंकर टहलने गए और साथ में संजू को भी अपने साथ ले गए। वे उसे गाँव में रामदीन चाचा के लिए हर तरह की आवश्यक व्यवस्था करने को कह रहे थे। संजू चुपचाप सुन रहा था। गौरीशंकर से संजू के घर की हालत छुपी हुई नहीं थी। उन्होंने संजू को यथासंभव मदद करने की पेशकश भी की। संजू चुप रहा। गौरीशंकर किसी भी हालत में रामदीन चाचा को खुश रखना चाहते थे। अपने पिता के बाद वे गाँव में किसी और से जुड़े हुए थे, तो वे रामदीन चाचा ही थे। अगले दिन रविवार की शाम, गाँव के लिए इन दोनों की ट्रेन थी।

देखते देखते दो सप्ताह बीत गए थे। गौरीशंकर ने रामदीन चाचा की सेवा-टहल में कोई कमी नहीं छोड़ी। गौरीशंकर की कल छुट्टी थी। सुबह आराम आराम से उनकी और घर की दिनचर्या चल रही थी। आज सुबह से रामदीन चाचा कुछ कुछ अपने पुराने अवतार में लौट रहे थे। कुछ तो अभिषेक की निष्कलुष भावना तो कुछ आज विदाई की बेला, रामदीन चाचा सुबह से ही किसी न किसी बहाने कोई न कोई बात किए चले जा रहे थे। गौरीशंकर ने आखिरकार अपने मन की बात आज उनसे ही कह डाली, "चाचा जी, मैं सोचता हूँ... क्यों नहीं रिटायरमेंट के बाद गाँव ही शिफ्ट कर जाऊँ! आप क्या कहते हैं?"

आदतन अपने दोनों होठों को कसे हुए रामदीन चाचा बोले, "इसके पहले हुए कि तुम्हें मैं अपनी राय दूँ, तुम मुझे यह बताओ कि क्या अब तक की अपनी नौकरी से तुमने यहाँ कोई घर लिया है!"

गौरीशंकर, रामदीन चाचा की इस भूमिका को बखूबी समझ रहे थे। सहज रहते हुए उन्होंने कहना शुरू किया, "जी, थोड़ी दूरी पर एक प्लॉट लिया है"।

रामदीन चाचा की आँखों में चमक की किरण कौंध गई, जैसे यह उपलब्धि स्वयं उनके बेटे की हो। बोले, "बहुत अच्छे गौरीशंकर। हमें तुमसे यही उम्मीद थी। अब अपने सवाल का उत्तर सुनो। बेटे, गाँव में अब पहलेवाली बात नहीं रही। तुम चाहे शहर में जितने होशियार बने फिरते रहो, मगर गाँव वाले तुम्हें समुचित आदर-भाव कभी नहीं देंगे। वे तुम्हें अपने बीच से उठा हुआ एक व्यक्ति मानेंगे और तुम्हारे साथ भी वही व्यवहार करेंगे, जो वे आपस में करते हैं। तुम्हें यह सब ठीक नहीं लगेगा"।

गौरीशंकर भी चुप रहनेवाले कहाँ थे, "मगर चाचा जी, यह तो अच्छी बात है न! लोग आपसे बराबरी का बर्ताव करें। इसमें हर्ज क्या है! हमें ऐसी किसी सामंती मानसिकता से बाहर आना चाहिए"।

रामदीन चाचा ने इस बीच पानी का एक गिलास माँगा। पत्नी को न कहकर गौरीशंकर स्वयं उनके लिए पानी लाए। रामदीन, अपने चिर-परिचित अंदाज में, पानी को चाय की तरह चुस्की लेकर पीते हुए आगे बोलने लगे, "देखो, गौरीशंकर मैं बराबरी की किसी भावना का विरोधी नहीं हूँ। यह तुम जानते हो। मगर वे बराबरी पर बात नहीं करते बेटा, बल्कि उसके बहाने एक दूसरे की टाँग खींचते हैं। तुम यह सब लंबे समय तक सह नहीं पाओगे "।

गौरीशंकर भी अपनी पूरी रौ में आ गए थे, "क्यों अब भी तो मैं बीच बीच में गाँव जाता ही हूँ न! सब तो ठीक ही लगता है"।

रामदीन मुस्कुरा दिए, "पिछली बार गाँव कब आए थे गौरीशंकर और कितनी देर के लिए!"

गौरीशंकर चुप रहे।

अपनी आदत के मुताबिक रामदीन चाचा ने पहले सवाल किए और बाद में स्वयं ही जवाब दिया, "गौरीशंकर बेटे, मुझे भलीभाँति याद है। तुम दिन भर रुककर शाम की गाड़ी से ही वापस हो गए थे। क्यों परदेसी बाबू! और यह बात कोई दो वर्षों पुरानी है"।

गौरीशंकर, अपने प्यारा चाचा की स्वाभाविक रंगत भरी इस प्रतिक्रिया से दसबजिया फूल की तरह खिल गए और कहने लगे, " चाचाजी, आपको यह सब कुछ याद है!"

रामदीन भी उसकी आँखों में देखते हुए मुस्कुरा बैठे, "अरे बेटा गौरीशंकर, तुम भूल गए शायद, यह नाम मेरा ही रखा हुआ है"।

"कैसे भूल सकता हूँ चाचा जी। शुरू में मैं कितना चिढ़ता था अपने इस उपनाम से। हर कोई आपकी ही तरह मुझे इस नाम से चिढ़ाने लगा था", गौरीशंकर ने नकली रोष दिखाते हुए कहा।

रामदीन चाचा मुस्कुराकर रह गए।

गौरीशंकर कुछ देर स्लीपर कोच संख्या 'एस-12' में उनके साथ बैठे रहे। ट्रेन में जारी हलचल के बीच तीनों खामोश थे। सहसा प्यार से गौरीशंकर के कंधे पर हाथ रखते हुए रामदीन चाचा ने अश्रुपूरित आँखों से उनसे कहा, "गौरीशंकर, वैसे तो कहना नहीं चाहिए, मगर कह रहा हूँ, तुम परदेसी ही ठीक हो। और अब तो इस शहर में तुमने जमीन का एक टुकड़ा भी खरीद लिया है। उसपर एक अच्छा सा घर बनाओ। यहीं अपना घर-परिवार संभालो। बच्चों को पढ़ाओ-लिखाओ। हाँ... बीच बीच में अपनी जमीन जायदाद की खोज-खबर लेने गाँव जरूर आ जाया करो'।

गौरीशंकर चुपचाप सुनते रहे। उनसे कुछ बोला न गया।

ट्रेन की सीटी बज चुकी थी। गौरीशंकर ने रामदीन चाचा के पाँव छुए और फिर वे चुपचाप ट्रेन से नीचे उतर गए। ट्रेन प्लेटफॉर्म से खिसक रही थी। गौरीशंकर उसकी

विपरीत दिशा में थके और उदास कदमों से जैसे-तैसे बढ़े चले जा रहे थे, मानो किसी ने उनसे जीने की वजह हर ली हो।